International Journal of Social Science and Economic Research

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

SAN 500-700 ISVI MEIN UTTAR BHARAT KE AANTARIK EVAM BAHY VYAPAR KI STHITI

सन् 500-700 ई0 में उत्तर भारत के आंतरिक एवं बाह्य व्यापार की स्थिति

फ़रज़ाना ख़ान

7, प्रोफ़ेसर्स रेज़ीडेंसी, साहित्य पुरम् कॉलोनी, सातवां बुज़ुर्ग, निगोही रोड, शाहजहाँपुर-242001 (उ0प्र0)

पूर्व मध्यकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है आर्थिक परिवर्तन। इसने भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया। तत्कालीन समाज में भूमिदान की परंपरा बढ़ गई थी, जिससे समांती-व्यवस्था की जड़ें जम गई थीं। उनकी शक्ति बढ़ चुकी थी। औद्योगिक विकास के कारण सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ गया था। जिन लोगों के पास भूमि या पशु जैसे अर्थाजन के साधन नहीं थे, उन्होंने विभिन्न प्रकार के लाभकारी व्यापार में संलग्न होकर आर्थिक लाभ तो कमाया ही साथ ही समाज मे अपनी स्थिति को आदरपूर्ण बनाया।[1]

तत्कालीन समाज आन्तरिक और विदेशी व्यापार की उन्नति का काल था। स्थल और जल-मार्ग, दोनों से ही व्यापार होता था। देश के प्रमुख नगर, जैसे- भड़ौंच, उज्जयनी, विदिशा, प्रयाग, बनारस, गया, पाटलिपुत्र, वैशाली, कौशाम्बी, ताम्रलिप्ति, मथुरा तथा पेशावर आदि राजमार्गों से जुड़े हुए थे, जिन पर व्यापारी और यात्री सुरक्षा और सुविधा से आते-जाते थे।

गुजरात और पश्चिमी तट पर कल्याण, चौल, भड़ौंच और काम्बे प्रमुख बन्दरगाह थे। दक्षिण-भारत के पूर्वी तट पर अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह थे जहाँ से दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों तथा चीन तक से व्यापार होता था। इस काल में भारत के चीन से होनेवाले व्यापार में वृद्धि हुई थी।

रोमन-साम्राज्य द्वारा भारतीय वस्तुओं के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने और उसके विभाजित हो जाने के कारण भारत के पश्चिमी देशों से होने वाले व्यापार को हानि हुई थी, परन्तु बाद में बाइजैन्टाइन-साम्राज्य, मिस्र, ईरान, अरब, यूनान और सीरिया से भारत का व्यापार चलता रहा जो भारत के पक्ष में था।

भारत विदेशों को कपड़ा, गर्म मसाला, मोती, मणियाँ, सुगन्धित पदार्थ, नील, ओषधियाँ, नारियल और हाथी दाँत से बनी वस्तुएँ निर्यात करता था तथा विदेशों से सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता, कपूर, घोड़े आदि आयात करता था। इन सभी से देश सम्पन्न था।

वस्तुओं के मूल्य सस्ते थे। फाह्यान के अनुसार विनिमय के लिए कौड़ियों का प्रयोग भी होता था, यद्यपि व्यापार का मुख्य साधन सिक्के थे।

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

भारत-निवासी जल-यात्राएँ करते थे। विशाल समुद्री जहाज़ों को बनाते थे और इनका प्रयोग यात्रा तथा विदेशी व्यापार के लिए करते थे। अनेक नगरों का निर्माण उस काल की सम्पन्नता के सूचक हैं।

गुप्तकाल में वाणिज्य और व्यापार भी एक महत्त्वपूर्ण अंग था। कुछ अभिलेखों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि स्वर्ण-मुद्राओं के आधिक्य के कारण, आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार सुद्रढ़ था। नगरों के निगमीय प्रशासन में श्रेणियों और व्यापारियों की भूमिका को भी प्रायः इसी सन्दर्भ में विवेचित किया जाता है। परन्तु कुषाण-युग की तुलना में गुप्तयुग में व्यापारिक ह्रास के लक्षण दिखते हैं।

आन्तरिक व्यापार की दृष्टि से देखा जाए, तो इस काल में ग्राम आत्मनिर्भर इकाई के रूप में सामने आ चुके थे। मुद्रा-प्रणाली का पतन हो रहा था। कार्य के बदले नक़द-वेतन-भुगतान का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।

क्या यह सम्भव है कि सोने-चाँदी-ताँबे से दैनिक वस्तुओं को ख़रीदा-बेचा जा सकता है? इस बात का संकेत फाह्यान ने भी किया है कि गुप्तकालीन जनता अपने दैनिक वस्तुओं में वस्तु-विनिमय प्रणाली का प्रयोग करता था अथवा वह कौड़ियों के बदले वस्तुएँ बेचता-ख़रीदता था। अतः आन्तरिक व्यापार की दृष्टि से वस्तुओं का उत्पादन कम ही हो पाता रहा होगा।

विदेशी-व्यापार की दृष्टि से भी अब वह स्थिति नहीं रह गई थी, जो कुषाण-सातवाहन युग में थी। इसका एक कारण यह भी था कि रोमन साम्राज्य विघटित हो गया था, अतः विदेशी व्यापार की स्थिति शिथिल पड़ गई थी।

प्रोकोपियस के 6ठी शताब्दी के वर्णन से पता चलता है कि फ़ारस-वासियों ने रेशम के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। रोमन साम्राज्य से उनकी शत्रुता के कारण भी भारतीय व्यापार को हानि हुई।

भारत के रेशम-व्यापार की स्थिति तत्कालीन अभिलेख से स्पष्ट है। कुमार गुप्त प्रथम बन्धुवर्द्धन के मन्दसौर अभिलेख में कहा गया है कि नर्मदा के निकट लाट-विषय से रेशम बुनकरों की एक श्रेणी अपना काम छोड़कर पश्चिमी मालवा आ गई थी। रेशम-बुनकरों को दूसरा व्यवसाय अपनाना पड़ा। रोमन-साम्राज्य भी रेशम उद्योग हेतु गम्भीर रूप से प्रयासरत् था। इन सभी कारणों से पाश्चात्य देशों के साथ व्यापार की स्थिति बिगड़ गई थी।

"यह सम्भव है कि यूथोपिया के माध्यम से भारत ने रोमन साम्राज्य तक पहुँचने की चेष्टा की हो, क्योंकि एक ओर हम देखते हैं कि कॉसमॉस (6ठी शताब्दी) भारत एवं यूथोपिया के व्यापार का उल्लेख करता है और दूसरी ओर रोमन सम्राट जस्टिनियन यूथोपियाई नरेश हेल्लैस्थेयॉस से समझौता किया था, ताकि वह फ़ारस-वासियों की शत्रुता का सामना कर सके। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि इस रेशम-व्यापार में फ़ारस-वासियों ने ऐसा एकाधिकार समाप्त कर लिया था कि कॉसमॉस के विवरण प्रायोगिक प्रतीत नहीं होते।"[2]

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

विदेशी व्यापार की स्थिति के सम्बन्ध में भारत और चीन के व्यापार की चर्चा ख़ूब की जाती है। वैसे भी विदेशी व्यापार की परम्परा भारत में बहुत प्रचीन है। मौर्य, गुप्तकाल से लेकर वर्द्धनवंश तक भारतीय वैदेशिक व्यापार की ख़ूब उन्नति हुई। एक प्रकार का झीना कपड़ा, जिसे 'चीनांशुक' कहा जाता था, भारत में बहुत पसन्द किया जाने लगा था। इसे चीन से आयात किया जाता था।[3] 'हर्षचरित' में इस बात का उल्लेख है कि अर्जुन द्वारा राजसूय-यज्ञ के निमित्त सम्पत्ति-संग्रह हेतु चीन पर आक्रमण किया गया था।[4] एस0के0 मैती के मतानुसार सम्भवतः रेशम पहले चीन से भारत आया और बाद में यहीं से अन्य देशों, यथा- पर्शिया तथा पश्चिमी एशिया के अन्य देशों में भेजा गया।[5]

इस सम्पूर्ण काल में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध पूर्व और पश्चिम के देशों से सुगमता पूर्वक होता रहता था।[6]

वैदिक काल में भारत का विदेशी व्यापार होता था। सौ पतवारों वाले जहाज़ों का चलना उस काल की व्यापारिक समृद्धि का द्योतक है। भारत से बहुत-सी वस्तुएँ निर्यात की जाती थीं। विशाल पोतों पर यात्रा करते समय सार्थवाही प्रतिकूल मौसम की परवाह नहीं करते थे। वे समुद्री तूफ़ानों का सामना करते हुए अपनी यात्राएँ करते थे। यहाँ तक कि प्रतिकूल वायु के होने पर भी यात्रा करने में नहीं हिचकिचाते थे। 'तिलकमंजरी' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सुमात्रा, जावा, बोर्निया आदि द्वीपों से विभिन्न प्रकार के मसाले, गोल मिर्च, सुगन्धित लकड़ी, लौंग, टमाल, मंदार आदि मँगाए जाते थे।[7]

पारसीक, बनायु काम्बोज, वाहलीप तथा सिन्धु जैसे अच्छी नस्ल के घोड़ों का आयात पश्चिमी एवं मध्य एशिया से किया जाता था। इसका उल्लेख 'अभिधान रत्नमाला' में किया गया है।[8]

मेधातिथि के अनुसार दक्षिण भारत का बहुमूल्य पत्थर एवं मोती, पश्चिमी भारत के अच्छी नस्ल के अश्व, पूर्वी भारत का हाथी एवं केसर, रेशम और ऊन कश्मीर के राजकीय व्यापार थे। अतः व्यक्तिगत व्यापार पर दण्ड की व्यवस्था थी।[9]

भारतीय व्यापार जल एवं स्थल दोनों मार्गों से होता था। प्रतिहार के शासन में कन्नौज सभी स्थलीय मार्गों से जुड़ा हुआ था। उस समय के लोकप्रिय विदेशी स्थलीय मार्गों में पश्चिमोत्तर प्रान्त था। तक्षशिला से हिन्दूकुश से होते हुए व्यापारी ईरान (पर्शिया) आते थे। वहाँ से वे आक्सास की घाटी पहुँच जाते थे। पंजाब और बग़दाद के मध्य का मार्ग मुसलमानों के लिए अधिक सुगम था।[10]

स्थलीय मार्गों के अतिरिक्त जलीय विदेश-व्यापार होता था। आन्तरिक व्यापार के लिए नदियों का प्रयोग होता था। अल-मसूदी के अनुसार भारतीय पोत विदेशी-व्यापार के लिए वसरा, सिरफ, ओमान, जावा, चम्पा एवं खनुक तक जाते थे।[11]

गुप्त साम्राट भोगी थे। अतः बाह्य व्यापार की स्थिति बदल गई थी। देश से सुरक्षा का वातावरण समाप्त हो गया था। इसीलिए हर्ष के काल तक आते-आते सभी तीर्थ-स्थल और नगर विभिन्न पथों और मार्गो से जुड़ गए

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

थे। यहाँ तक कि गाँव भी अपेक्षित मार्गों से जुड़ गए थे और गाँवों से आवश्यक सामग्री को सुगमता से मँगवाया जाने लगा था। देश के सभी नगर विभिन्न मार्गों से जुड़ गए थे।[12] उस समय उत्तर भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध नगर कन्नौज था।

हर्ष के समय में भी भारतीय मूल की वस्तुओं की विदेशों में बहुत माँग थी। इस कारण भारत से काग़ज़, मसाले, कपूर, विविध महीन वस्त्र, हीरा, गोमेद, रत्न, प्रसाधन-सामग्री, धातु के कलात्मक बर्तन आदि का निर्यात होता था।

बोधिरुचि, बुद्धभद्र, बुद्धजीव, बुद्धशान्त आदि ऐसे बौद्ध-धर्म प्रचारक थे, जो 5वीं-6ठी शताब्दियों में चीन गए थे। कॉसमॉस के विवरण से पता चलता है कि उस समय भारत-चीन व्यापार में श्रीलंका (तत्कालीन सिंहलद्वीप) एक महत्त्वपूर्ण बिचौलिए का कार्य करता था। फाह्यान भी व्यापारी जहाज़ द्वारा चीन गया था।

भारत से चीन को निर्यात किए जाने वाली वस्तुओं में सुगन्धित पदार्थ, विभिन्न प्रकार के केसर, मूल्यवान रत्न, सुन्दर वस्त्र इत्यादि थे। फाह्यान के इस बात से कि चीन और भारत को जोड़ने वाला मध्य एशियाई मार्ग अत्यन्त कठिनाईपूर्ण था, यह प्रतीत होता है कि भारत और चीन का व्यापार वस्तु-विनिमय प्रणाली पर आधारित था। यह बात भी स्पष्ट होती है कि भारत विभिन्न वस्तुओं के बदले चीन से रेशम प्राप्त करता रहा होगा। भारत में चीन के और चीन में भारत के सिक्के न होना भी इस बात को प्रमाणित करते हैं।

दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों से गुप्त नरेशों का व्यापारिक सम्बन्ध कम ही रहा होगा, क्योंकि ताम्रलिप्ति ही ऐसा बन्दरगाह था, जहाँ से गुप्त नरेश अपने व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे। परन्तु इस स्थान के उत्खनन से गुप्तकाल के अवशेष न के बराबर हैं। चम्पा, बर्मा, कम्बोडिया, सुमात्रा, मलय द्वीप, जावा, बोर्नियो, बालि आदि के अभिलेखों में गुप्तों के व्यापारिक सम्बन्धों की ऐसी चर्चा नहीं मिलती।

गुप्तकाल के आन्तरिक व्यापार का यदि साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में व्यापार की स्थिति सुदृढ़ थी। नगरों का विकास, उच्च मुद्रा-प्रणाली, विदेश-व्यापार साथ ही वस्तुओं की सूची देखकर ही विद्वान इस पर एकमत हैं। परन्तु 500-700 ई0 के मध्य व्यापार की स्थिति गिरती नज़र आती है और शहरी केन्द्रों के पतन की प्रवृत्ति भी इंगित होती है। इसके निम्न कारण प्रतीत होते हैं-

1. क्षेत्रीय राज्यों की संख्या अधिक हो जाने के कारण विभिन्न सीमाओं पर नए कर व नए नियम बनने लगे।

2. लुटेरों का भय था। इसकी पुष्टि विभिन्न उपाख्यानों से होती है। धातु-विकलता की स्थिति जो गुप्तोत्तर काल में उत्पन्न हुई थी, अब क्रमशः मुद्रा-प्रणाली के पतन का रूप लेने लगी थी।

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

गुप्तों के पश्चात् राजपूतों के शासनकाल में व्यापार की स्थिति उन्नत दशा में थी। ‘‘कपड़े के व्यवसाय के लिए भारत इस समय अत्यधिक प्रसिद्ध था। धातु का काम भी इस समय विशेष रूप से पनपा। यातायात की ओर भी ध्यान दिया गया। व्यापारिक सुविधा के लिए इस समय व्यापारिक-संघ बने।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन्नतिशील दशा में था। पूरब में ताम्रलिप्ति तथा पश्चिम में भड़ौच भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। यहाँ से कपड़ा, मखमल, चन्दन, हाथी दाँत की चीज़ें, बहुमूल्य पत्थर तथा गरम मसाला आदि विदेशों में भेजे जाते थे। राजपूत-काल में सोने-चाँदी व ताँबे के सिक्के प्रचलित थे।‘‘[13]

हर्षकाल में राजस्व मुख्यतः भूमि से ही प्राप्त होता था। इसका कारण यह था कि व्यापार-वाणिज्य में अब उतनी आय नहीं रह गई थी। रोम का व्यापार-वाणिज्य तीसरी शताब्दी के बाद घटने लगा था, जिससे अधिक मात्रा में सम्पत्ति प्राप्त होती थी। साथ ही रोम-साम्राज्य पर हूणों के आक्रमण से इसका अन्त ही हो गया। अतः भारतीय व्यापार की निर्भरता दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यापार से अधिक बढ़ गई। दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न भागों में भारतीय व्यापार-केन्द्रों की स्थापना से आय का आदान-प्रदान उस ओर हो गया।

वस्तुतः गुप्तकाल में व्यापारिक समृद्धि उनकी आर्थिक प्रगति का अन्तिम चरण थी, जो पिछले काल में आरम्भ हुई थी। समुद्रपारीय व्यापार के लिए मौर्यकाल में लिए गए ऋण पर ऊँची दर से ब्याज लिया जाता था, जो इस समय समाप्त हो गया था। अतः इस काल में समुद्रपार के व्यापार की स्थिति कुछ अधिक सुद्रढ़ हो गई थी। ‘‘प्राचीनकाल के 240 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की तुलना में अब ब्याज की औसत दर 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। दोनों पक्षों की सहमति होने पर ब्याज वैध दर से अधिक हो सकता था, परन्तु ब्याज की कुल राशि मूलधन से अधिक नहीं हो सकती थी। ब्याज की दर कम होने से यह संकेत भी मिलता है कि माल काफ़ी मात्रा में मिलने लगा था, जिसके फलस्वरूप लाभ की दर घट गई थी।‘‘ [14]

कुल मिलाकर इस काल में व्यापार-वाणिज्य अपने उतार-चढ़ावों के साथ समृद्धि की स्थिति में था।

संदर्भः

1. ‘दा रूरल अरबन एकानॉमी’: जयमल राय: पृ0-321

2. ‘प्राचीन भारत का इतिहास’: (संपा0-द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली): पृ0-299

3. ‘कुट्टनीमतम्’: श्लोक: 66ए 344

4. ‘पाण्डवः सव्यसाची चीन विषयतिक्रम्य राजसूयसम्पदे...।’: सप्तम उच्छवास: 59

5. ‘इकोनॉमिक लाइफ़ इन द गुप्त पीरिएड’: एस0के0 मैती: पृ0-318

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:03, Issue:12 "December 2018"

6. जयशंकर मिश्र: पृ0-611

7. 'तिलकमंजरी': धनपाल: पृ0-133ए 135ए 137

8. 'अभिधानरत्नमाला': 2.28

9. टीका 'मनुस्मृति': मेधातिथि: 8ए 399

10. 'गुप्त साम्राज्य': इलियट और डाउसन: पूर्वनिर्दिष्ट: जिल्द-1: पृ0-14

11. 'द एज ऑफ़ इम्पीरियल कन्नौज: पृ0-420

12. 'समराइच्चकहा'-6: पृ0-16.31

13. 'प्राचीन भारत का इतिहास': डॉ0 विनोद चन्द्र सिन्हा: पृ0-161

14. 'भारत का इतिहास': रोमिला थापर: पृ0-134

 Copyright © IJSSER 2018, All rights reserved